प्रभुसत्ता के लिए सिखो का संघर्षः प्रारंभिक अठारहवीं शताब्दी में खालसा में विलित निम्नवर्गीय समूहों की सामूहिक चेतना (1699–1748)

मनोज कुमार

परिचय

"च दुश्मन बहाँ हीलहसाजी कुनद।
किक बर वै खुदा रहमसाजी शबद।
अगर यक बरायद द हो दह हजार।
निगहबान ऊ रा शबद किरदार।।" [2]

इस शोध प्रपत्र का उद्देश्य प्रारंभिक अठारहवीं शताब्दी के दौरान खालसा पंथ में विलित उन तमाम निम्नवर्गीय समूहों एवं उन महत्वपूर्ण चरित्रें की चेतना को दर्शाना है, जिन्होनें एक विपरीत परिस्थितियों में धार्मिक आडम्बरों की प्रवाह किए बगैर एक मजहब को छोड़ दूसरे मजहब का समन्वय कर अपनी चेतना को बरकरार रखा। हम यह भी कह सकते है कि एक ऐसा समूह जो समाजिक सोपानो के निमन्तम पायदान पर था, और प्रत्येक प्रकार के शोषण सहने के बाद भी अपनी चेतना का प्रयोग कर इन समूहों ने मुगल अफसरशाही के तिलिस्म को तोड़ते हुए 1699 से पहले ही और अततः खालसा पंथ के ध्वज के अन्तर्गत स्वयं को समूहबद्ध किया। इन समूहों के कार्य एवं इनकी चेतना ऐतिहासिकता की कसौटी पर सटीक उतरती है। किन्तु इतनी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का प्रायः इतिहासकारो ने लेश मात्र ही जिक्र किया है। इस तरह के हाशिए पर रहने वाले उन चरित्रे को इतिहास की मुख्यधारा में लाना ही मेरा मुख्य उद्देश्य है। इस शोध प्रपत्र को सहूलियत के हिसाब से दो भागों में बाटा है जहां पहले भाग में खालसा की स्थापना से पहले की स्थिति और उसके सामाजिक सोपानो को दर्शाना मुख्य लक्ष्य है वहीं दूसरे भागों स्त्रेतों के आधार पर कुछ ऐतिहासिक चरित्रें का जिक्र करना है जिन्होनें सिख इतिहास में सबसे मुश्किल हालातो में अपनी चेतना का प्रदर्शन कर अठारहवीं शताब्दी में यह दर्शाया कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, एवं व्यवहारिक चेतना केवल उच्च तबके की बपौती मात्र नहीं होती हैं।

महत्वपूर्ण शब्दावली

समप्रभुता, दशमग्रंथ, खालसा, निम्नवर्गीय समूह, शिल्पकार, समानतावादी, प्रगतिशील, पादशाही

शोध प्रपत्र के इस भाग का सरोकार सिख इतिहास के तात्कालिक और समाजिक पहलूओं का विश्लेषण कर आलोचनात्मक मत प्रस्तुत करना है जोकि इतिहास के पन्नों में यथावत् रूप से दज ंनहीं है लेकिन इतिहास की स्मृतियों के कई अंशों में छिटका हुआ दिखाई देता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि तात्कालिक परिवेश में निम्नवर्गीय चेतना किसी जाति विशेष पर केन्द्रित नहीं थी।[3] इसके लिए सबसे जरूरी यह है कि अठारहवीं शताब्दी की उन लोगों की विद्रोही प्रवृत्ति को समझा जाये, जिन्होने सत्रहवीं सदीं के अन्त होते ही अपने संघर्ष का बिगुल फूंक दिया। इसके जानने के लिये 'विद्रोह और स्वायत्तता के माध्यम से क्षेत्रीय सत्ता का आधार क्या था?' को जानना अत्यन्त आवश्यक हैं। उन सामाजिक–राजनीतिक शक्तियों की संरचना जोकि क्षेत्रीय स्तर पर विद्रोह के माध्यम से प्रभुसत्ता हासिल करने की कोशिश कर रही थीं, लगभग एक समान थीं। इन शक्तियों के अंतर्गत पट्टे पर राजस्व इकट्ठा करने वाले, व्यापारी, लिपिक तथा स्थानीय भू–स्वामी कुलीन परिवारों के लोग शामिल थे। कुछ क्षेत्रें में जैसे बंगाल, अवध, पंजाब और हैदराबाद जो पहले मुगलों के प्रांत थे, धीरे–धीरे परिवर्तन के द्वारा स्वायत्त राज्यों का गठन हुआ। रिचर्ड बी– बारनैट ने इन

उत्तराधिकारी राज्यों द्वारा अपनाये गये कदमों को रेखाकिंत किया हैं। ये कदम इस प्रकार थे–

1. सूबेदार या नाजिम, जो राज्य के प्रमुख सैन्य अधिकारी के द्वारा अपने दीवान या राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त कर लेता, जिससे सत्ता का केन्द्र शाही दरबार से साम्राज्य के क्षेत्रें की ओर चला गया।
2. सूबेदारों के द्वारा अपने उत्तराधिकारियों की नियुक्ति, जो प्रारंभ में सम्राट की सहमति पर आधारित थी।
3. पहले केन्द्रीय खजाने में जमा किये जाने वाले करों का अब क्षेत्रें में इस्तेमाल, जिससे प्रांतों द्वारा केन्द्र को भेजे जाने वाले भुगतान यदा–कदा कुछ खास मौकों पर दिये जाने वाले उपहार आदि तक सीमित होकर रहे गये।
4. सूबेदारों के द्वारा स्वतंत्र रूप से राजनयिक और सैन्य गतिविधियों की शुरुआत।
5. क्षेत्रीय शासक परिवारों के द्वारा मुगल दरबार के बजाए प्रांतीय राजधानियों में अपने निवास स्थल स्थपित करना।
6. क्षेत्रीय शासकों के द्वारा विशेष तथा औपचारिक अवसरों पर इस्तेमाल की जाने वाली सोने की मुहरों को नहीं ढलवाना, परन्तु कम से कम साम्राज्य के चाँदी के रुपये को अपनी टकसालों में ढलवाना।
7. अंततः स्वतंत्रता की प्रतीकात्मक घोषणा जिसका माध्यम था, क्षेत्रीय शासक के नाम से खुतबा (मुख्य मस्जिद मे सामूहिक शुक्रवार की प्रार्थना और उपदेश) जारी करना।[4]

यहाँ ऊपर बतायें गये कदमों से पहलें पाँच कदम लगभग सभी उत्तराधिकारी राज्यों के द्वारा अपनायें गये। अंतिम कदम बहुत से राज्यों द्वारा नहीं उठाया गया क्योकि मुगल सम्राज्य के विघटन के बाद भी शाही–व्यवस्था की प्रतीकात्मक सत्ता काफी लम्बे समय तक बनी रहीं। यहाँ एक बात ध्यान देने की हैं कि सिखों के अठारहवीं सदी में एक नई चेतना के उद्भव के कारणों के अलावा और भी कई अन्य कारण थे जिसे गहनता से समझ सकते हैं। उदाहरण के तौर पर सिखों के संघर्ष की प्रक्रिया अठारहवीं शताब्दी से नहीं गुरु अर्जन देव की शहादत से पहले से चली आ रही थी। अर्थात कहीं–न–कहीं खालसा पंथ की स्थापना के पीछे गुरु गोविन्द सिंह की एक रणनीतिक सोच थी।

जैसा कि कई मैक्लॉयड समूह के इतिहासकार खालसा की स्थापना एवं उसके उद्देश्य को सिरे से खारिज करते हुए कहते है कि खालसा जाटों की सामरिक प्रक्रिया का थोड़ा परिवर्तित रूप था। किन्तु विभिन्न विद्वानों और इतिहासकारों के तथ्यों के उपरान्त कहा जा सकता है कि कुछ इतिहासकार किसी एक पहलु को पकड़कर ही अपने इतिहास का लेखन करते चले गए जिसके कारण ये भ्रमात्मक स्थिति उत्पन्न हुई। इसी कारण ऐसे इतिहासकार भले ही अपनी मंजिल न हासिल कर लें किन्तु वे अवश्य ही सामाजिक पहलुओं को छोड़ गए। जैसा मैक्लॉयड समूह के इतिहासकारो की एक सी राय हर पहलुओं पर रहती हैं।[5]

स्वयं मैक्लॉयड खालसा की स्थापना और इसके उद्देश्यों पर संशय की दृष्टि रखते हुए कहतें है कि यह जाटों की ग्रहित विचारधारा का एक विकसित रूप था।[6] किन्तु हम जब मुबारक मिर्जा की बहादुर शाहनामा को देखते हैं तो वह इस बात को बड़ी हैरानी से दिखाता हैं कि मुगल सम्राज्य को औरंगजेब के समय, फिर बहादुरशाह के समय पंजाब सूबे से मिलने वाली जमा और

हासिल के बीच का अंतर बहुत ज्यादा हो गया था।[7] वह यह भी कहता कि मुशरिफ–ए–मामलिक की सौपीं रिपोर्ट को कई–कई दिन हरम में छोड़ देता था, यहीं नहीं उसे साम्राज्य के जमा और हासिल से बावस्ता कोई सरोकार नहीं रहता था।[8] इन विवरणों से दो निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है। इसमें सबसे पहला निष्कर्ष तो यह कि इन विवरणों से यह सही प्रतीत होता है कि बहादुरशाह ही शाह–ए–बेखबर था। वहीं दूसरी ओर औरंगजेब के तुलना में बहादुरशाह के हासिल का अंतर यह दर्शाता है कि जमा होने के उपरांत सम्राज्य को हासिल न मिल पाना सूबों में तैनात गर्वनरों की खामी थी। या तो वे केन्द्र की कमजोरी का लाभ उठा कर राजस्व के मोटे भाग को डकार जाते थे या किसान वास्तव में राजस्व चुकाने की स्थिति में नहीं थे। किन्तु किसानो की ऐसी स्थिति का जिक्र किसी समकालीन स्त्रेत में दिखाई नहीं देता है।

एक दो वर्ष बाद ही मुगल साम्राज्य उस दौर में पहुँच जाता है जहाँ से बादशाह का निर्णय सैयद बंधुओं पर निर्भर हो जाता हैं।[9] अर्थात जैसा की सिख इतिहासकार कहते हैं[10] कि सिखों के संघर्ष के सबसे महत्वपूर्ण कारणों में धार्मिक गतिविधियों को सबसे ज्यादा तवज्जों दी जाती हैं, किन्तु इस अध्ययन एवं मुबारक मिर्जा के विवरणों से यह उभर कर आता है कि कहीं–न–कहीं पंजाब सूबे से जैसे–जैसे जमा और हासिल का अंतर बढ़ता गया इसका सबसे ज्यादा असर निम्नवर्गीय प्रकृति के लोगों पर आया और यह असर दम घोटने की तरह था। इसका असर कृषक, मजदूर, चर्मकार, मैला ढोने वाले, लोहार, बढ़ई, मूज से मंजी बनाने वाले, भंगी, हलवाई, नाई, बुनकर और तमाम तरह के लोगों पर पहले पड़ा। इस विषय को खालसा केन्द्रित इतिहासकार की शैली से न देखे तो यह दिखाई देता है कि अधिशेष का शोषण अवश्य ही निम्नवर्गीय समूहों को एक भटकाव ओर विद्रोह की स्थिति में ला कर खड़ा करने के लिए जिम्मेदार था, जो एक सही समय की प्रतीक्षा कर रहा था।[11] खालसा की स्थापना के बाद तेजी से सिखों की संख्या बढ़ने लगीं।[12]

ऐसा नहीं था कि सिखों की स्थिति सामाजिक तौर पर शत–प्रतिशत सही थी। उनमें आपसी द्वेष, लालच और गुरु पद को लेकर अक्सर माहौल तल्ख ही रहता था। जिसमें तेजी गुरु तेग बहादुर के देहान्त पर सामने आती हैं। ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट है कि सिखों में आपस मे मतभेद थे।[13] गुरु की कमजोरी अनुभव करते लालची मसन्द शक्तिशाली हो गये थे। उन्होंने लोगों को मिलाकर छोटे छोटे दल बना लिये थे और गुरुयाई पद को प्राप्त करने वालों का विरोध और समर्थन करके ये समझने लगे थे कि गुरु केवल उनके हाथ की कठपुतली हैं। परिणाम स्वरूप जो लोग किसी कारण से गुरु नहीं बन सके थे, गुरु के बालक होने के कारण अपना नया सम्प्रदाय बनाकर बालक–गुरु को अपनी पदवी से हटा देना चाहते थे। जिन में मोणें, धीरमलियें और रामराइयें प्रसिद्व थे।[14] खालसा स्थापना से पहले एक दौर ऐसा भी आया जहाँ पंजाब सूबे में सिखों के लिए एक रुकाव लाया। जब गोविन्द सिंह भंगणी और नदौण का युद्ध जीत कर गहन रचनात्मक कार्यो में जुड़ गये। उधर औरंगजेब दक्कन मे अपनी शक्ति झोकें बैठा था। इतने समय मे गुरु गोविन्द सिंह को सिख समाज की शिक्षा, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और अपनी सैन्य व्यवस्था को सुधारने का सही मौका मिल गया। जिसमें एक रणनीति और अनुभव की अपार संभावनाये थीं।[15] यहाँ खालसा के पहले के हालातों का जायजा लेने के बाद यह निष्कर्ष स्थापित होता है कि खालसा की स्थापना के पीछे गुरु गोविन्द सिंह की एक सोची समझी रणनीति थी। क्योंकि अगर वे राजनीतिक उद्भव से साम्राज्वादी विस्तार की ओर बढ़ते तो 1688 से 1699 तक के बीच में आसानी से मुगल साम्राज्य को बहुत हानि पहुँचा सकते थे। इसलिए मैक्लॉयड और कुछ मुस्लिम इतिहासकार सैयद

लतीफ जैसे स्कॉलर का मानना है कि सिखों ने केवल अठारहवीं सदी में अराजकता फैलाईं।[16] इन तमाम विवरणों से यह तो कहा जा सकता है कि खालसा की स्थापना के पीछे कोई एक या दो विशेष कारण नहीं थे। बल्कि एक सोची समझी रणनीति का हिस्सा था। यानि यहाँ दो महत्वपूर्ण पहलू उभर कर सामने आते हैं।

पहला यह कि अधिशेष का दोहन निम्नवर्गीय समूहों के लिए खासा असहनीय हो गया जिसके चलते वे विद्रोह के मार्ग पर निकल पड़े। वही आंतरिक और बाहरी दोनों तरह से सिखों के अपने अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा तो उन्होनें वही रास्ता चुना और दोनों समूहों का विलय खालसा की संयुक्त सेना या पंथ या समुदाय के रूप में हुआ। इस निष्कर्ष से जेम्स स्कॉट की उस मत की याद आती जहाँ वे विद्रोह, हड़ताल, आन्दोलन, बगावत, लूटपाट, चोरी, संपत्ति का नुकसान और तमाम तरह के इन्हीं हथियारो का प्रयोग कमजोर या यूं कहे कि निम्नवर्गीय लोग अंततः करते थे।[17]

गुरू नानक द्वारा स्थापित खिखिज्म के सिद्धान्त अठारहवीं शताब्दी में आते आते कही न कही हालातो से लड़ते लड़ते परिवर्तन की ओर अग्रसर हो गये, और गुरू गोबिन्द सिंह के आते ही सिख इतिहास की रासयनिक अभिक्रिया में तेजी आने लगती है। जहा गुरू गोबिन्द सिंह सबसे पहले आते ही मसन्द प्रथा जो सिखों के लिए लालच का सबसे बड़ा अंग बनते जा रही थी को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया और सिखइज्म में परिवर्तन करते हुऐ उसे तत्तकालिक समाज के समतुल्य लाने की कोशीश में जुट गये और इस प्रकार खालसा पंथ का अस्तित्व सामने आया।

इस प्रकार पहले भाग में हमने देखा कि किस प्रकार खालसा की स्थपना से पहले सिखों की स्थिति भी विभाजित थी जहां गुरू नानक के सिद्धान्तों में परिवर्तन आने लगा था। वही सिख बाहुल क्षेत्रे में मुगल सुबेदारो की मनमानी और राजस्व वसूलने की अधिकता ने, निम्नवर्गो के आर्थिक शोषणा की प्रक्रिया को उत्प्रेरकीय घटना मे बदल दिया। परिणामस्वरूप 1699 मे खालसा जैसा पंथ सिखों के लिये नई चेतना के साथ भारत के इतिहास में शामिल हुआ, जिसमें पहले गुरू गोबिन्द सिंह और बाद में बन्दा बहादुर जैस प्रमुख चरित्रें की रणनितीक पहल, और सबसे बढ़ कर सम्प्रभुत्विक चेतना दृष्टिगोचर होती है। किन्तु प्रथम बर्कशायर कान्फ्रेन्स और द्वितिय बर्कशायर कान्फ्रेन्स के बाद इतिहास की जिन उपविषयो का जिक्र हुआ 45 सालो के बाद भी निम्नवर्गीयों का साहित्यक और ऐतिहासिक वर्णन उनकी भूमिका के अनरूप नही हो पाया है। एक अनुमान के अधार पर यह कयास लगाया जा सकता है कि सिखों की संख्या औसतन 25 प्रतिशत तक बढ़ी होगी जिससे खालसा के संस्थापक का मनोबल और अन्य योद्धा अवश्य ही बढ़े होगें। जो सशस्त्र संघर्ष के लिए तैयार रहते या तैयार किये जा सकते होगें। केओर सिंह अपनी गुरुबिलास पातशाही दास में बताते है कि हालांकि यह घटना अठारहवीं शताब्दी के बाद दंत कथाओं के द्वारा प्रचलित संसर्गों से प्राप्त होती हैं जहाँ वे कहते हैं कि सिखों ने उन लोगों को राज काज में शमिल कर लिया जो दूसरे मजहबों में अछूत समझे जाते थे।[18]

यहाँ उस अवयव को भी देखा जा सकता हैं जहाँ गुरु गोविन्द सिंह ने सामाजिक तौर पर एक जातिगत चेतना को भी समानता के दायरे में रखा। जहां 'इक इक गरीबां नू दो पादशाही' का अर्थ उन तमाम लोगों को उनकी जाति का या उनके समुदाय का मुखिया बना देने से था जो अभी तक समाज के सबसे निचले दर्जे पर थे और पेट भरने की कोशिश से ज्यादा कुछ कर ही नहीं पाते थे किन्तु ऐसा नहीं था कि उनमें चेतना के अवयय नहीं थे। उसी चेतना का प्रयोग कर वे अपने मजहब और समुदाय को छोड़ खालसा में विलित हुए और उन्होंने लगभग एक सौ साल

तक सिखों की तरह जुझारू बन कर अपनी चेतना को मानवीय आधारों पर जीवंत बनाये रखा। वही ऐसा भी हुआ कि कई लोहारों और हाशिए पर रहने वाली निम्न जातियों को समानता के तख्त पर बैठा कर अपनी समानता एवं बंधुत्व का दर्शन कराया। इससे यह तो पता चलता है कि कौन कौन से कार्य करने वाले लोग किस किस शैली के माध्यम से खालसा के ध्वज के निहित आये किन्तु उनके कार्यो का वर्णन किसी समकालीन स्त्रेतों में नहीं हैं।

इस तरह 'राज करेगा खालसा' और 'इक इक गरीबां नू दो पातशाही' कहीं–न–कहीं महत्वपूर्ण भूमिका में दृष्टिगोचर होते हैं। इन निम्नवर्गीय में वे लोग थे जो एक हजार लोगों का खाना बना सकते थे तो वहीं ऐसे भी लोग थे जो जूते, धारदार खंडा, चक्री, तीर बना सकने में समर्थ थे। इस तरह स्पष्ट है कि निम्नवर्गियों की चेतना ने ही खालसा को उसके उद्भव से लेकर बंदा बहादुर की शहादत तक एक 'अल्प संयोजित सैन्य व्यवस्था' की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। मुगलों के लिए यह घातक प्रहार था। बहरहाल इन पहलुओं के अलावा निम्नवर्गियों की चेतना का उपयोग एक योजना के अंतर्निहित था कि समानता और बंधुत्व से प्रेरित गुरु गोविन्द सिंह ने इस सामाजिक पाट को भरने के लिए इसे एक मुहिम के तौर पर चलाया? इसे जानने के लिए गुरु गोविन्द सिंह के जातीय संघर्ष के मिले प्रमाणों पर नजर डाल लेनी चाहिए।

जब कोई स्वार्थी, भौतिक सुख–सुविधाओं को सर्वोपरि मानने वाली जाति अपनी वासना, निकृष्ट आकांक्षा एवं उदर पूर्ति के लिए दूसरी जाति के इन्हीं नियामक तत्वों पर वज्रघात करती है, तब जातीय–संघर्ष की स्थिति अस्तित्व में आ जाती है।[19] गुरु गोविन्द सिंह के समस्त क्रिया–कलापों एवं साहित्यिक रचनाओं की पृष्ठभूमि में तद्युगीन परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। सामाजिक वि शृंखलता, राजनीतिक पराभव, शासकों की मनोवृत्ति तथा जन–मानस में विकसित हाने वाली विकृतियों ने ही गुरु साहब को दानवता के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये प्रेरित किया था।

एक ऐसा समय जब मुगलों के सूबेदारों ने वीभत्सता की सारी सीमाओं को तोड़ दिया तो ऐसी स्थिति में जो सिखों ने मार्ग अपनाया था उसी के फलस्वरूप गुरु गोविन्द सिंह को अपनी कर्मभूमि में भक्ति के साथ शक्ति को समाविष्ट करना पड़ा। वास्तव में दशम गुरु मानवतावादी धर्म के पोषक थे इसी धर्म ने उन्हें समाज मे रहने वाले सभी लोगों को अपने पक्ष में किया। जिसमें निम्नवर्गीय लोगों की भूमिका सबसे प्रभावशाली थी। इसमें अधिकांश नीची जाति के लोग थे जिन्होने आगे चलकर मिस्लों की भूमिका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सिख परम्परा के दशम गुरु, गुरु गोविन्द सिंह सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत थे। मानव मात्र की समता एवं समस्त जीवों में अखण्ड ज्योति की प्रतिष्ठा में उनकी दृढ़ आस्था थी। किन्तु उनका युग असहिष्णुता, धर्मान्धता तथा अनाचार की करुण कहानी कहता हुआ प्रतीत होता है जिसका कारण दिल्ली के तख्त–ए–ताउस पर बैठे बादशाह का कमजोर और साम्राज्य में बैठे वजीरों और गर्वनरो का शक्तिशाली होना था।

"अगर यक बरयाद दहो दस हजार।
निगहबान ऊ रा शब्द किरदार।
चुहक यार बाशद चि दुश्मन कुनद।
अगर दुशमनीरा ब सद तन कुनद।।
खसम दशमानी गर हजार आबुरद।
न यक मूई ऊ रा हजार आबुरद।।"[20]

जब मध्यकालीन इतिहास की चर्चा करते हैं तो विद्रोह, संघर्ष जैसी बातें आम हो जाती हैं। मिसाल के तौर अबुफजल अकेले आइन में अकबर के काल में 100 से ज्यादा प्रभावशाली विद्रोहों का

जिक्र करता है।[21] जिनमें से कई का तो अकबर ने स्वयं के नेतृत्व में दमन किया। इसी तरह मिनहाज अपनी तबकात–ए–नासिरी में इल्लतुमिश के काल होने में वाले षडयंत्रें एवं सैकड़ो विवादों का जिक्र करता हैं।[22] यहाँ गौर फरमाने वाली बात यह है कि प्रायः इन विद्रोहों का सीधा संघर्ष ऐसे समुदायों से होता था जो चेतना कम और प्रतिशोध को ज्यादा व्यक्त करते थे किन्तु अगर यही हम अठारहवीं शताब्दी के संदर्भ में बात करें तो वास्तव में ये काल निम्नवर्गियों की चेतना का काल था जहाँ उन्हें बदलाव या अपने हक के लिये प्रयोग किये जाने वाले हथियारों का न पता होते हुए भी वे बिना किसी सुझाव के बदलाव के लिए अग्रसर हो गये थे[23] इस तरह की चेतना को बड़ी ही संजीदगी के साथ रणजीत गुहा ओर उनके साथी इतिहासकारों ने इतिहास के तौर पर लिख कर उन्हें उनका वास्तिवक हक दिया हैं। एक ऐसा हक जिसकी माँग उन्होने की ही नहीं हैं।[24]

जैसा कि आरम्भ से ही सर्वविदित है कि सिखों में गुरु काल से ही समानता के अवयय शामिल थे किन्तु अठारहवीं शताब्दी के बाद ऐसी स्थिति भी आई जसमें एक निम्नवर्गीयों के सुदृढ़ किये समाज मे एक और निम्नवर्गीय समूह का निर्माण हुआ जिसे 'दलित सिख' कहा गया। इटली के मार्क्सवादी चिन्तक आंतोनिओ ग्रामशी ने साबल्टर्न शब्द समाज के गौण, दलित, उत्पीड़ित लोगों के लिये प्रयोग किया था। भारतीय इतिहास अध्ययन के लिये भी इस नजरिये को अपनाना प्रासंगिक तथा आवश्यक प्रतीत हुआ क्योंकि प्रभुत्व केवल आर्थिक दबाव के आधार पर ही स्थापित नहीं रहता।[25]

एक छोटे खेतिहर और एक भू–स्वामी के मध्य केवल जमीन होने न होने का ही अन्तर नहीं होता है–वेशभूषा, बोलचाल, घर–द्वार, जात–पात, देवी–देवता सभी अभिजन वर्ग के ऊंचे होते हैं अर्थात कृषक जीवन के विविध पहलुओं पर उनका अधिकार होता हैं। मूल स्त्रेत और कर्त्ता के पारस्परिक सम्बंध निम्नवर्गीय इतिहासलेखन में अधिकाधिक गतिरोध उत्पन्न करते हैं। सामान्य जन की गतिविधियों की जानकारी मानक स्त्रेतों में स्वतः नहीं पाई जाती है। यहाँ यह भी महत्पूर्ण विषय है कि निम्नवर्गीय स्वयं नहीं लिखते हैं। इसके लिये सरकारी कर्मी पटवारी, लेखपाल, थानेदार, मजिस्ट्रेट आदि उनके संबंध में लिखते है।

अपने एक लेख के माध्यम से राजकुमार हंस जो कि विगत पच्चीस वर्षों से दलित एवं सिख इतिहास के शोध कार्य में जुड़े हुए है, कहते हैं कि सिखों की चर्चा करते हुए पंजाब में एक ही जाति का जिक्र किया जाता है। जो कि सिख मिस्लों से प्रारम्भ होकर सिखों की कुछ चुनिन्दा जातियों तक ही रह जाता हैं। वास्तव में एक लेख के माध्यम से वे बताते हैं कि निम्नवर्गीय तो कोई भी हो सकता है। उनका मानना है कि दलितों को दलित बनाने में हिन्दुईस्म ने जिस वर्गीकरण की शुरुआत की और भारतीय समाज को बांटा इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था को वे सिरे से खारिज करते हैं।[27] खारिज किया तो वहीं मध्यकाल में इस हिन्दू अतिक्रमण को सिख धर्म ने भरसक सुधारने का प्रयास किया।[28] उनका तात्पर्य सिख इतिहास में कुछ ऐसे चरित्रे की चर्चा करने से है जिन्होने सिखों के सभी विभागो बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया किन्तु वह हाशिए का शिकार हुए। अपने शोध प्रपत्र के इस भाग में मेरा तात्पर्य कुछ सिख इतिहास के चरित्रे को उभारना है जिसे उनकी चेतना को इतिहासलेखन मे कलमबद्ध किया जा सकें। इस श्रेणी में सबसे पहले नाम भाई जैता सिंह (जीवन सिंह) के हवाले से कहते हैं कि सिख समाज के कितने लोग भाई जैता सिंह को जानते है। जो केवल एक आधार विषय को ही देख सकते हैं। जीवन सिंह के नाम से जुड़ने वाला भाई जैता सिंह अपने आप में एक ऐतिहासिक विषय है जिसके लिये पर्याप्त शोध समाग्री नहीं हैं।[29] जीवन सिंह के नाम के साथ

गुरु गोविन्द सिंह के पास एक मुरीद के तौर पर 1699 ई– में भाई जैता सिंह शामिल हुआ। यह पहला दलित कवि था जिसने पंजाब के अठारहवीं सदी को जानने की कोशिश की।[30]

गुरु साहिब ने भी उसका हक देते हुए भाई जैता को पंजावन बादशाह से संबोधित कर दलितों का मान बढ़ाया। अर्थात चार साहिबजादा के बाद पॉचवे साहिबजादे का दर्जा भी मिला। यही समझने का सबसे महत्वपूर्ण आधार है कि गुरुनानक देव से लेकर दशम पिता ने अपने धर्म का आवरण इस प्रकार बनाया जिसके चलते समाज मे रहने वाले सभी वर्गों के लोगो को सहूलियत हो किन्तु एक ही सदी के बाद सामन्जस्य का यह तिलिस्म बड़ी आसानी से टूट गया, जिसके चलते सिख धर्म में फैली मान्यता भी शिथिलता का शिकार हो गयी। जिन लोगो को समानता से रहना चाहिए वे दलित सिख कहलाने लगे। जिनकी चेतना का कोई साहित्यिक रिकार्ड नहीं रखा गया।

सन् 1705 में मुगलों से होने वाले सिखों के युद्धों में भाई जैता सिंह ने सिखों की सेना का नेतृत्व किया।[31] इससे एक बात तो तय है कि केवल गुरु घराने के लोग ही ऊॅचे पद पर काबिज नहीं होते थे बल्कि योग्यता उसका आधार थी। वह एक योद्धा था। तो वह एक साहिबजादा भी था, वह एक कवि भी था ओर सबसे बढ़कर वह एक दलित था। जो इतनी बहुआयामी बुद्धि को सिख समुदाय की भलाई के लिए प्रयोग कर रहा था। 'श्री गुरु कथा' नाम की एक दीर्घ कविता की रचना के बाद भाई जैता सिंह की ऐतिहासिकता पर चार चाँद लग गये। जिसने अपनी इस कथा को उस समय देखते हुए लिखा जब वह जिन्दा था।[32] किन्तु मसला यह है कि भाई जैता सिंह की इस अभूतपूर्व रचना का जिक्र सिख साहित्य एवं इतिहास के किसी विद्वान ने नहीं दर्शाया है। इस गुरु कथा का वर्णन सिख साहित्य एवं इतिहास दोनों के लिए बहुत ही ज्यादा महत्वपूर्ण हो सकते है। कहीं भी इस तरह के स्त्रेतो का उपयोग या सम्मिश्रण दिखाई नहीं देता हैं।[33]

इसी तरह भाई बोटा सिंह और गरजा सिंह, थे जिनका वर्णन ऐतिहासिकता से कोसो दूर है। काजी अब्दुल रज्जाक की मृत्यु के बाद 1738 में जकारिया खान ने अब्दुल समद खा यूसफी को भ्रमण करने वाली सेना का प्रधान नियुक्त कर दिया। नई नियुक्ति पाने और ऊचा ओहदा पाने के चलते वह सिखो को परेशान करने लगा और यह ऐलान कर दिया कि जो सिखों के शीष लाकर देगा उसे पुरस्कृत किया जाऐगा इसका लाभ सबसे ज्यादा दूसरे मजहब के लोगो ने उठाया और सिखों को मुगलों को ने चुन चुन कर कत्ल किया। ऐसी स्थिति में दोआब के क्षेत्रे मे भाई बोटा सिंह और गरजा सिंह ने बड़ी ही संजीदगी से लोगो को एकत्र किया और एक नेतृत्व करते हुए मुगल सैनिको से युद्ध किया। सिखों की युद्ध शैली को अगर देखा जाऐ तो हम देखते है कि उनकी कोई प्रमाणिक वारफेयर नही था बल्कि वह एक गोरिल्ला पद्धति से युद्ध किया करते थें। इन दोनो की नेतृत्व क्षमता थी जिससे मुगल सिखों के साथ सहमति पर राजी हो गए ओर मिस्लो ने अपनी शक्ति तेजी से बढ़ा ली।[34]

इसी तरह 1740 मे मस्सा सिंह रंघाड़ और उसके साथी अधिकारी से मुस्लुल खां से सुखा सिंह जैसे सिख ने लोहा लिया जहां तक मेरा तात्पर्य इन लोगो का जिक्र करके इनकी शैली और चेतना को दर्शाना है क्योकि हम देखते है कि ये वे लोग थे जिन्हे किसी तरह की कोई विशेष जिम्मेदारी नहीं थी। किन्तु अपने पंथ के प्रति उनकी चेतना थी कि जब रंघाड़ सिंह ने श्री हरमिन्दर साहिब की मर्यादा को भंग करने लगा ऐसी स्थिति में सुखा सिंह ने अपने साथियों के साथ मिल कर केवल हरमन्दिर साबह को उन लोगो के आंतक से बचाया बल्कि सुखा सिंह ने

रंघाड़ सिंह को मौत के घाट भी उतार दिया।[35] इस तरह सिख इतिहास मे कई ऐसे चरित्रें की संख्या जो आज तक कलमबद्ध नही हो पाई जिसका बहुत बड़ा कारण स्त्रेतों की कमी आवश्य ही है लेकिन उसे बड़ी वजह एक ऐसे तबके का जो निम्नवर्गीयों के इतिहास को सामने आने ही नहीं देता चाहता हैं। इतिहासकारो का रूख देखे तो सबसे पहले जॉन–सी–वैबसटर के अनुसार दलित निम्नवर्गीय इतिहास समाज के उस मूल तत्व से संबधित है, जो सामाजिक इतिहास को, इतिहास के निचले स्तर से देखता है, ये अपनी विचारधाराओं के चश्में उतार कर वास्तविकता के दरिया में गोते लग कर केवल वास्तविक पहलुओं को ही इतिहास में दर्शाते हैं।[36]

बीसवीं शताब्दी के अंतिम समय में गंडा सिंह जैसे कुछ सिख इतिहासकारों ने सिख इतिहास पर कुछ सामान्यतया प्रचलन से हट कर लिखना आरम्भ किया। जिसमें प्यारासिंह, शमशेरसिंह अशोक, प्रो– प्रीतम सिंह, हिव्यू मैक्लॉयड, जे–एस–ग्रेवाल, पशोरा सिंह जैसे इतिहासकारों ने अहम मुद्दों पर ध्यान एकाग्र करना शुरू किया। इन पहलूओं से यह बात समझ मे आती है कि सिखों के समाज या धर्म में जिन आधारभूत अवयवों को होना जरूरी था वे नहीं रहे थे या कुछ समय के लिए वे नैतिकता के पतन के शिकार हेा गए। इन अवयवों का निर्माण गुरु नानक देव से गुरु गोविन्द सिंह तक बड़ी ही संजीदगी से किया गया था। इस पर अपनी टिप्पणी को प्रसांगिक बनाने का कार्य पशौरा सिंह ने अपनी कृति मे किया जिसमें दलित सिखों की अवधारणा को इतिहासकारों के मत के माध्यम से दर्शाते हैं।

मैक्लॉयड कहना है कि पंजाब में आरम्भ से ही ब्राह्मण ऊॅची स्थिति में थे। इस बात का आधार वह किस प्रमाण से करते है यह नही पता, किन्तु यह अवश्य पता लगता है कि वे कोई चौदहवीं या पन्द्रहवी शताब्दी के प्रमाण से अपनी इस बात को पुष्ट करते हैं। मैक्लॉयड कहते है कि कास्ट ने हमेशा से एक हायरकी को र्प्रस्तुत किया। जहाँ कास्ट का संबंध कहीं न कहीं अर्थिक अव्यवस्थाओं से भी था। जबकि मैक्लॉयड बताते है कि आदि ग्रंथ में इस तरह की सामाजिक व्यक्तिगत वर्गों की कोई भूमिका नहीं हैं। वही अठारहवीं शताब्दी के राहितनामा को देखें तो सिख साहित्य में भी वर्ग को दो सिद्धान्त दिये गये हैं। जहाँ जाति और वर्ग दो अलग–अलग धाराओं में बहते नजर आते हैं। मैकलायड के अनुसार अगर देखे तो उनका भी यही मानना है कि सिखों की समानता में चोट उन्नीसवीं शताब्दी में जाकर हुई।

वहीं चौपा सिंह के रहितनामा को देखें तो वह जाति को विभाजित करने के लिए बरन वर्ग का र्प्रयोग करता है। वही एक अध्ययन के माध्यम से मैक्लॉयड कहते हैं कि संघर्ष के दौरान किसी एक समूह के लोगों ने सौ प्रतिशत योगदान किया हो यह संभव नहीं था तो साहित्यिक रचनाओं में किसी एक या उच्च समूह का योगदान कहाँ तक जायज हैं।[37] दूसरी और देखें तो पंजाब में 66 प्रतिशत जट सिख पूरी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को नियन्त्रित करते थे। मैक्लॉयड कहते है कि संघर्ष के दौरान इन जट् सिखों के योगदान प्रतिशत को आंका तो नहीं जा सकता मगर यह जरूर है कि इनका योगदान 1775 ई– के बाद ही हुआ। वैचारिकता तो यह थी कि सभी समान है, अगर कोई एक सिख शूद्र है तो सभी सिख शूद्र है किन्तु अगर कोई एक भी ऊॅच जाति का है तो वह भी ऊॅच ही है।

रामगढ़िया सिखों के बारे में बताते हुए वे कहते हैं कि ये बड़े ही जुझारू किस्म के होते थे। इसमें अधिकांश वे लोग है जो जट सिख के यहॉ नौकरी करते थे। ले देकर यह कह सकते हैं कि रामगढ़िया समूह में लोहार, राजमिस्त्री, नाई ये सभी तरह के कार्य करने वाले लोग थे जो अठारहवीं शताब्दी के दशको में निम्न पेशों से

जुड़कर पंथ के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे।[38] मैक्लॉयड इसके अलावा यह भी बताते है कि जट ओर रामगढ़िया सिखों के अलावा सिख पंथ के दूसरे वर्गों की तुलना ने जट ओर रामगढ़िया सिख इनसे अच्छी स्थिति मे थे किन्तु दलित सिखों में एक चूहड़ा, स्वीपर, झाड़ू लगाने वाले सिख मजहबी सिख कहलायें।[39] इन साक्ष्यों से दो तीन बातें उभर कर आती है जिनमें से सबसे प्रमुख यह है कि सिख धर्म भी आडंबरहित नहीं रह सका। धर्म जहाँ मुक्ति का मार्ग है वहीं यह एक ऐसी अवधारणा को प्रस्तुत करता है जहाँ तुलनात्मक रूप से देखने पर यह मालूम पड़ता है कि अन्य मजहबों से इसका प्रारंभिक दौर बंधुत्ववादी, वैमन्सयता से परे और भाईचारे पर ही निर्भर करता था। किन्तु सामाजिक ऊहापोह की स्थिति ने ही सिख धर्म की उस उभयनिष्ठ मर्यादा के तिलिस्म को तोड़ दिया जिसका निर्वाह सिख गुरुओं ने चला रखा था। अपनी इसी किताब में पशौरा सिंह ने जॉन–सी– वैबस्टर का जिक्र करते हुये सिखों के जाति व्यवस्था पर लिखते हुए एक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किये है। जिसमें सबसे पहले खुशवन्त सिंह कहते है कि '1900 के पंजाब लैंड ऐलिनेशन एक्ट ने सिखों को तीन अलग अलग जातियों में बॉट दिया उसमे से जट्, नॉन जट्, और अछूत बना दियें जिसका खाामियाजा केवल अछूतों को उठाना पड़ा और वे अब खेती बाड़ी छोड़ कर लूट पाट और ठगी करने लग गयें।

इसी ने एक ऐसी व्यवस्था का सूत्रपात किया जिसे सिख एक तरह से बागी हो गयें।'[40] इतिहासकार जे–एस–ग्रेवाल का कहना है कि पंजाब के सिखों ने केवल सिख पंथ का ही निर्माण नहीं किया बल्कि उन्होने एक भारतीय समाज का खाका खींचने में भी मदद की। वे अछूतों के बारे में बताते हुए कहते है कि सिखों ने तो अपना एक ही धर्म समझा अर्थात गुरु घरानों को किसी प्रकार का कष्ट का ना होना, इसमें मत जोड़ते हुए कहते हैं कि पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह के समय भी सिख मैदान में तैनात थे तो रणजीत सिंह के समय में भी अगर अछूत थे तो भी उनकी स्थिति कोई खराब नहीं थीं।[41]

अपने द इवोलयूशन ऑफ द सिख कॉम्यूनिटी में प्रो– मैक्लॉयड सिख पंथ के जातिगत व्यवस्था पर टिका भाई जैता सिंह को लेते हुए कहते हैं कि जिन लोगो ने पंथ के बिखराव के समय पंथ के प्रति इतनी आत्मीयता दिखाई उन लोगो की स्थिति इस दशा मे मानवीय विषयों के लिए सहीं नहीं है। जिसमें रामदासियास, मजहबीयास और रंगरेहटे प्रमुख थे। इन मसलों को निजात कहीं–न–कहीं सिंह सभा आन्दोलन के बाद ही मिली।[42] हरजोत ऑबराय ने सिख परम्परा के तहत अपने तार्किक और ऐतिहासिक विवरणों के माध्यम से एक विवाद तो अवश्य खड़ा कर दिया है किन्तु इतिहास का धर्म भी है कि आप प्रमाण के आधार पर जो हुआ उसे व्यक्त करें। जहाँ तक संभव हो इसमें इतिहासकार की तमाम शैली का अंश प्राप्त हो जाता है। हालांकि इनका कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के सिंह सभा आन्दोलन पर टिका हुआ हैं। वह सनातन सिख और तत्खालसा सिख के विभिन्न चरित्रें को दर्शाते हुए उनमे आपसी विरोधाभास को दिखाते हैं। किस तरह से सनातन सिखो ने पूरे समाज को ही अपना समझा किन्तु अन्य उभरने वाले सिखों के समूहों ने ढकोसले और समाज को बांटना शुरू कर दिया इसका भी वर्णन मिलता है।

मूल्यांकन

सिख इतिहास के अंर्तगत जिन ढके आवरणों को हमने प्रभुसत्ता के जिस पैमाने पर रख समझने की कोशिश की है अंत में उसका निष्कर्ष यहीं निकलता है कि मानवीय पहल अगर सकारात्मक हो तो वह साहित्य और इतिहास दोनों के लिए बेहतर हो सकता है। वहीं अगर मानवीय पहल ही

नकारत्मक हो तो वह साहित्यकारों और इतिहासकारों दोनो के लिए नुकसानदायक होता है। जिस तरह से अठारहवीं सदी के उत्तर भारत को देखें तो यह तो साफ–साफ दिखाई देता है कि वह दौर सिखों के जीवन पर आधारित साहित्यिक विधाओं की रचनाओं से कोसों दूर रहा है। प्रभुसत्ता के लिए सिखों का संघर्ष जिस तरह से हुआ उसे समझना और उसके चरित्रे को इतिहास की मुख्य धारा मे लाना सम्पूर्ण दक्षिण ऐशिया के इतिहास को समझने के लिए जरूरी है। केवल भाई जैता सिंह, कनौड़ामल, भाई बोटा सिंह, भाई सुबेगसिंह और सहबाज सिंह, भाई सुखा सिंह ही नहीं इस तरह के तमाम लोगों का वर्णन न के बराबर हैं।

इस संघर्ष में केवल श्री गुरुगोविन्द सिंह और बंदा सिंह बहादर का ही योगदान नहीं था, बल्कि इस संघर्ष का योगदान सिख महिलाओं एवं तत्कालीन समाज के उन लोगो ने दिया जो उस पंथ का हिस्सा बनकर रहे फिर एक सदी के बाद अछूत की श्रेणी में रखे गये। सिखों में तो हिन्दू धर्म की तरह से वह घृणा के व्यापक अवयव नहीं थे किन्तु जो भी देखने को मिला वह सिखधर्म का आधार नहीं था। इतिहासकारो के तर्क–वितर्क केवल जानकारी प्राप्त करने के लिए तो जरूरी है किन्तु इस तरह के सामाजिक विषयों को प्रस्तुत करना भी महत्वपूर्ण है। इस तरह देखा जाए तो निम्नवर्गीय सिखों की चेतना का सम्पूर्ण योगदान खालसा पंथ को मिला तभी जाकर सिखों का खालसा राज अस्तित्व में आया। पंजाब के सिखों का अठारहवीं सदी का इतिहास अपने आप ही एक सामजिक इतिहास था जो अपनी आधारभूत संस्कृतियों के लिये सामने वाले से ही संघर्षशील था।

संदर्भ सूची

1. शोधार्थी, इतिहास एवं संस्कृतिक विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली E-mail: mann.bestreporter/gmail.com
2. दशम ग्रंथ, चतुर्थ भाग–अनुवादक– डॉ– जोध सिंह, पृष्ठ 659–660.
3. जैसा की इस शोध प्रपत्र की रूप रेखा का अधार प्रो– शाहिद अमीन की कृति और उनकी शैली का प्रभाव इस शोध प्रपत्र की आधारभूत संकल्पना का एक अंश है, जहाँ मैने यह आत्मसात किया कि निम्नवर्गीय प्रसंग के लेखन का कार्य आम जनता गरीब किसान, चरवाहा कामगार, मजदूर, दलित जातियां, स्त्री समाज और वह प्रत्येक चरित्र जिसका किसी न किसी तरह से एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक योगदान है, का तार्किक वर्णन करना ही निम्नवर्गीय इतिहास लेखन का आधार है। इससे पहले प्रो–जाफरी के साथ किया तारिख–ए–दिलकुशा और नुस्खा–ए–दिलकुशा ने मध्यकाल में वर्णित उन दशाओं को दर्शाता है जहां किसान, मजदूर, आर्टीजनस, सभी इस लगातार 20 वर्षो से युद्व करते थक गयें हैं। जहां वे अपनी केवल शारीरिक उपस्थिति को दर्शाते हैं। किन्तु वे मानसिक रूप से स्वतंत्र है और ऐसी स्थिति में उनकी तत्परता पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता।
4. रिचर्ड बरनैट बी, नार्थ इन्डिया बिटवीन ऐम्पायर, अवध द मुगल एंड द ब्रिटिश, 1720–1801, बरकले, 1980.
5. हिव्यू मैकलॉयड, सिखस एंड सिखजम, आमुख ऑकसफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1999 पृष्ठ संख्या 42–45.
6. हिव्यू मैकलॉयड, हु इज ए सिख?: द प्रोब्लम ऑफ सिख आईडैनटीटी (ऑक्फोर्ड: कैलारेनडन प्रेस, 1989), पृष्ठ संख्या 121–126.

दरअसल इस पूरे वाक्य का आशय यह दर्शाता है कि मैक्लॉयड का यह कहना है कि खालसा की स्थापना और पंच ककार और एक सन्यासी से योद्धा की प्रवृती खालसा से पहले जाटो ने समाहित की हुई थी। आवश्य ही सिखों ने इसी पद्वति को एक नये धार्मिक प्रचलन से जोड कर पूरे सिख समुदाय परिवर्तन की नए आयमों को जोड़ा मैकलॉयड तो सिखों के खालसा की स्थापना की तिथि पर भी शंका करते है और इसके कोई पुख्ता सबूत भी नहीं बतातें हैं।

7. मुबारक मिर्जा, बहादुरशाहनामा, एमएस–, न–786, पंजाब स्टेट अर्काइव्स, पटियाला.
8. वहीं एमएस नं. 786
9. सतीश चंद्रा, पार्टीस एंड पोलिटिकस एट द मुगल कोर्ट, 1707–1740, तृतीय संस्करण, दिल्ली 1982– पृष्ठ संख्या 71–77–
10. सिख इतिहासकार से तात्पर्य उन इतिहासकारों की शैली से जो खालसा केन्द्रित इतिहास को ही तवोज्जों देते हैं।
11. मुजफ्फर आलम, द क्राईस ऑफ मुगल एमपायर इन नार्थ इन्डियॉः अवध एण्ड पंजाब, 1707–1748– द्वितिय संस्करण, ऑक्सफार्ड यूनिवरर्सिटी प्रेस 2013, अध्याय चार, पृष्ठ संख्या 147–150–
12. तेजा सिंह गंडा सिंह, ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ सिखस, ओरियन्ट लॉगमैन, दिल्ली, 1950, पृष्ठ संख्या 47–57.
13. गंडा सिंह, लाइफ ऑफ बंदा सिंह बहादुर, पबलिकेशन ब्यूरों, पंजाबी , पटियाला, यूनिवर्सिटी 1990–
14. खुसवन्त सिंह, हिस्ट्री ऑफ द सिखस, वाल्यूम 1,ऑक्सफार्ड प्रेस, नई यूनिवर्सिटी दिल्ली, 1980 पृष्ठ संख्या 82–85–
15. खुशवंत सिंह, गुरु गोविन्द सिंह कॉनसैपट ऑफ धर्म युद्व, चंडीगढ़ गुरु गोविन्द सिंह फाउन्डेशन 1967–
16. सैयद मुहम्मद लतीफ, हिस्ट्री ऑफ पंजाब, सेन्ट्रल प्रेस, कलकत्ता, 1891 पृष्ठ संख्या 77–82–
17. जेम्स स्काट, वैपनस ऑफ द विक्स, ऐवरी डे फोरमस ऑफ पीजन्ट रजीसटैन्स, आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेंस, दिल्ली 1990– पृष्ठ संख्या 45–57–
18. केओर सिंह, गुरुबिलास पादशाही दास (संपादित शमशेर सिंह अशोक) पंजाबी , पटियाला, यूनिवर्सिटी 1967.

जाहिर सी बात है कि इनमें वहीं लोग रहें होगे जो मजदूर, कृषक, मैलाढ़ोने वाले, हलवाई, नाई, चर्मकार, लोहार आदि से जुड़े जिन्होने कुछ विशेष काम न करते हुए भी कई विशेष कार्य किये। क्योकिं उनमें चेतना का सूत्रपात स्वतः ही समाहित था।

19. "Caste is a social group having two charecterstics : 1) membership is a confined to those who are born fo members, and includes all persons so born; 2) the members are forbidden by an inexorable social lwa to marry outside the group & history for caste in india, S.V Ketkar, page 15
20. वहीं छन्द 104, 110,111 विचित्र नाटक, दशम ग्रंथ, भाग–1 अनुवादक– डॉ– जोध सिंह, अध्याय –1 छंद 101.
21. अबुल फजल, आईन–ए–अकबरी, संपादित बलॉकमैन, 1867–77 (नवल किशोर लखनऊ, 1869)– रिवाईज्ड जदुनाथ सरकार, वाल्यूम 2 और 3 कलकत्ता, 1949, पुनमुद्रित दिल्ली, 1978–

22. मिनहाज–उज–सिराज–उज–जुजानी, तबकात–ए–नासिरी

23. जेम्स स्कॉट, वैपन्स ऑफ द विक्स, ऐवरी डे फॉर्मस ऑफ पिसन्टस रजिस्टेनस, आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी–

24. रणजीत गुहा, 'ऐलिमैन्टरी आस्पैक्टस् ऑफ इंसरजैन्सी इन कोलोनियल इंडिया' दिल्ली, 1983, पृष्ठ संख्या, 52–55.

25. दीपेश चक्रवती, 'मार्क्स आफ्रटर मार्कसिज्मः सबाल्टर्न हिस्ट्रीज एंड क्वेश्चन ऑफ डिफरेंस' पोलीग्रापफ 6,7 1993.

26. अंतोनियों ग्रम्शी, 'नोट्स ऑन इटालियन हिस्ट्री' होर और स्मिथ द्वारा संपादित सलेक्शनस फ्रॉम प्रीजन नोटसबुक्स (न्यूयार्क,1971) पृष्ठ 47–52.

27. राज कुमार हंस, दलित एण्ड ईमैनसिपैटरी सिख रिलजन, प्रसेनटिड पैन्सलवानिया, युनिवरर्सिटी, दिसंबर, 2008–

28. ए–ई–ब्रास्टोवए, द सिख ऐथोनोलॉजीः दिल्ली लो प्राईस पब्लिकेशन, 1993 रिप्रिन्ट, पृष्ठ 18–

29. ''श्री गुरु कथा कृत कवि बाबा जीवन सिंह (भाई जैता सिंह) पब्लिश संपादित निरंनजन आरफी द्वारा रंगरेहटा दा इतिहास'' आदि काल तो 1850 तक), भाग 1 अमृतसर लिटरेचर हाउस 1993 पृष्ठ संख्या 396–426–

30. भाई जैता पहला ऐसा दलित सिख था जो सिख भी था, भक्त भी था और लेखक कवि भी था। जो बालकाल मे ही गुरु गोविन्द सिंह के तर्क और विवेक के कायल हो गये थें। जब दिल्ली से आनंदपूर के हालात खारब हो गयें तो गुरु तेग बहादुर के कटे हुये शीष को दिल्ली लाया और कहां रंगरेहेटे गुरु के बेटे अर्थात गुरु के बेटे ही वो है जो रंगरेहेटे है अर्थात जैता अपने और अपने जैसे लोगो की बात करता हैं। ये रंगरेहटे यही नही रूके एक अलग चेतना का निर्वाह करके अपने को एक सिख योद्धा की श्रेणी में खड़ा कर लिया भाई जैता सिंह को यह मालूम था कि सिखों को संघर्ष के लिए एक नहीं सैकड़ो सिख योद्धा चाहिए जो गुरु एवं पंथ के लिए अपने प्राणों को न्योछावर कर दें। और गुरु सिख की बात करके वह शीघ्र ही गुरु गोविन्द सिंह की कमान का कामडंर बन गया।

31. श्री गुरु कथा कृत कवि बाबा जीवन सिंह (भाई जैता सिंह) पबलिश संपादित निरंनजन आरफी द्वारा रंगरेहटा दा इतिहास 'आदि काल तो 1850 तक), भाग 1 अमृतसर लिटरेचर हाउस 1993 पृष्ठ संख्या 396–426– 452–456–

32. 'श्री गुरु कथा' एक अठारहवीं सदी का एक सिख स्त्रेत हैं।

33. उपरोक्त वही, पृष्ठ संख्या 2–4–

34. हरबंस सिह, द ऐन्साइक्लोपिडिया ऑफ सिखइज्म पृष्ठ 354–57

35. उपरोक्त वही, पृष्ठ 358

36. जॉन– सी–वैबसटर, द दलित सिख ए हिस्ट्रीः इन टॉनी बैलनटईन, संपदकिय, टैक्सर ऑफ सिख पास्टः न्यू हिस्टोरिकल परस्पैक्टिव, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 2007, पेज 150–

37. टॉनी बैलटायन, (संपा), टैक्चर ऑफ सिख पॉस्ट, न्यू हिस्टोरिकल परस्पैक्टिव, ऑक्सफोर्ड यूनिवरर्सिटी प्रेस 2007,पृष्ठ 118–

38. उपरोक्त वहीं, 120–

39. उपरोक्त वही, 114–119, मैक्लॉयड कहते है कि समानता के इस पंथ में जिस तरह हिन्दु समाज में निम्न जातियों का अंतेयिष्टि अलग होता हैं, कुआं अलग होता था, उसी तरह ये

भी गॉव के दक्षिण हिस्से में कार्य किया करते थे। इसके अलावा सभी गुरुद्वारों में अधिकांशतः रविदासियास की फोटो लगी होती थी। यह एक बहुत बड़ा एक समाजिक निरादर था। उन्नीसवी शताब्दी के अंत में जब ईसाईत जन आंदोलन अपने चरमतोकर्ष पर था तब चूहड़ा सिखों ने अपने इसाईत में शामिल होकर अपने को मुक्त किया किन्तु उन्हे सिख धर्म में आने का क्या लाभ मिला?

40. टॉनी बैलटायन, (संपा), टैक्चर ऑफ सिख पॉस्ट, न्यू हिस्टोरिकल परस्पैक्टिव ,अध्याय 6, ऑक्सफोर्ड यूनिवरर्सिटी प्रेस 2007,पृष्ठ 135
41. उपरोक्त वही, 135
42. उपरोक्त वही, 136.